# पूर्णावतार श्री कृष्ण तथा षोडश कला का रहस्य

**प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा**
वरिष्ठ शोध अध्येता – भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्,
पूर्व अध्यक्ष – दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।  — गीता, ४.४–८**

अर्थात् संसार में जब अधर्म बढ़ता है तथा धर्म क्षीण होने लगता है अथवा आसुरी शक्ति का राज तथा दैवी शक्तियों के परास्त होने पर ही भगवान् का भूमण्डल परअवतार होता है। सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों का संहार हेतु तथा धर्म संस्थापना के लिये बार–बार प्रत्येक युग में भगवान् श्री कृष्ण अवतरित होते हैं—ऐसी स्पष्ट घोषणा गीता में भगवान् ने स्वयं की है। भगवान् श्री कृष्ण अवतारी हैं तथा समय–समय पर वे अवतारों के रूप में अवतरित होते हैं। गीत गोविन्दकार जयदेव के मत में दश अवतारों को श्रीकृष्ण ने ही धारण किया, ऐसा मङ्गल पद्य में ही उन्होंने घोषित किया है—

**वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,**
**दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।**
**पौलस्त्यं जयते, हलं कलयते कारुण्यमातन्वते,**
**मलेच्छान् मूच्छर्यते दशाकृतिमते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।**

अर्थात् सृष्टि के बीज एवं वेदों के उद्धार हेतु 'मत्स्य' समुद्र मन्थन में मन्दराचल से अस्थिर जगत् को स्थिर करने हेतु 'कूर्म' तथा रसातलगामी भूमण्डल को धारण करने हेतु 'वराह' हिरण्यकशिपु जैसे दैत्यों को चीरने के लिए 'नृसिंह' राजा बलि को छलने के लिए 'वामन', दुष्ट क्षत्रिय राजाओं को नष्ट करने हेतु 'परशुराम' अहंकारी रावण को जीतने के लिए 'राम' द्वापर के दुष्टों को हल से नष्ट करने वाले 'बलराम' संसार के दुःखों का निवारण हेतु करुणामय 'बुद्ध' तथा मलेच्छों को मूर्च्छित करने हेतु 'कल्कि' की आकृति वाले दशरूपधारी श्री कृष्ण को प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार दशावतारों को श्री कृष्ण का अवतार माना गया है तथा श्रीकृष्ण को अवतारी, यहाँ यह सिद्ध होता है।

परमात्मा मूल स्वभावत: ज्ञानस्वरूप है परन्तु जगत् की रक्षा हेतु विविध रूपों में अवतार ग्रहण करता है। गीता कहती है कि अजन्मा, अव्यय और भूतों के ईश्वर होने पर भी माया के आश्रस से परमात्मा संसार में किसी जीव की प्रकृति को धारण कर अवतार रूप में उत्पन्न होता है।

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
**प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य संभवाम्यात्ममायया।। —गीता, ३.६**

अद्वितीय ब्रह्म में शक्ति पूर्ण है यह शक्ति जब दृश्य के आश्रय से उल्लसित होती है तो जगत् में इसका प्रकाश होता है। विकसित इस शक्ति को 'कला' कहा गया है। 'सोलह' शब्द–सम्पूर्णता का प्रकाशक है जहाँ पूर्ण सोलह कलायें प्रकाशित होती है उसे पूर्णिमा के चन्द्र के समान माना जाता है अर्थात् षोडश कलापूर्ण चन्द्र होता है। प्रत्येक दिन उसकी कला पहले क्षीण तथा फिर क्रमश: वृद्धि को प्राप्त करती है। प्रश्नोपनिषद् में 'एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमा: षोडशकल: सौम्य! पुरुष:' में परमात्मा में षोडश कला बताई गई है। षोडशी पुरुष में ये १६ कलायें परात्पर की १ कला, अव्यय उपादान कारण पुरुष की ५ कलायें—आनन्द, विज्ञान, मन:, प्राण तथा वाक् है। इसी प्रकार निमित्त कारण रूप अक्षर पुरुष की ५ कलायें हैं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि तथा सोम है। इसी प्रकार क्षर पुरुष (कार्यरूप) की ५ कलायें हैं—प्राण, आप्, वाक्, अन्न तथा अन्नाद। इस प्रकार आत्म तत्त्व १६ कलाओं से युक्त होता है (वेदों में भारतीय संस्कृति, पृ. १००–११५)। उस आत्मतत्त्व को ही गीता में परात्पर, अव्यय, अक्षर तथा क्षर रूप में विवेचित किया है। इसलिये सिद्ध होता है कि संसार के समस्त प्राणियों में षोडशकला वाला परमेश्वर ही प्रकाशित होता है। पूर्ण जगत्, समग्र जीव, ईश्वर आदि षोडश कला वाले परात्पर का अंश या कला है। भागवत में स्पष्ट किया गया है कि और सब तो अंशावतार है श्रीकृष्ण तो स्वयं षोडश कलापूर्ण भगवान् है—

**'अन्ये चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भागवत, १.३.२७)**

परमात्मा की षोडश कलाएँ जड़चेतनात्मक संसार में व्याप्त है जितना जीव अपनी योनि में उन्नत होता है उतना ही परमात्मा की कला से वह विकास को प्राप्त कर लेता है। संसार के जीवों में अन्य योनियों से उत्कृष्टता या अपकृष्टता भगवत्कला के विकास के आधार पर ही निर्धारित होती है। चेतन सृष्टि में सबसे पहले उद्भिज्ज होता है, जिसके अन्नमय कोष के द्वारा यह एक कला विकसित होती है इसे छान्दोग्य उपनिषद् प्रमाणित करती है—'षोडशां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् सोऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्।' अर्थात् उद्भिज्ज योनि में अन्नमय कोष के कारण एक कला प्रकट होती है। इसके बाद स्वेदज जीव में दो कला, अण्डज पक्षी में तीन कला तथा जरायुज पशु योनि में चार कला तक का विकास होता है। तत्पश्चात् मनुष्य योनि में साधारण मनुष्य से लेकर विभूतियुक्त मनुष्य में पाँच कला से आठ कला तक का भगवत् शक्ति का विकास होता है। इस विकास को 'लौकिक विकास' कला गया है। पूर्ण कला के आधे तक लौकिक कोटि का विकास है। अब नौ कला से लेकर षोडश कला सम्पन्न केन्द्रों का दिव्य या अलौकिक मानते हुए 'अवतार' कोटि में परिगणित किया जाता है। इसलिये नौ कला से षोडश कला तक सम्पन्न जीव भगवान् का अवतार कहे गये हैं चाहे वे मनुष्य हो या कोई जीव इसलिये मत्स्य, कूर्म, वराह आदि

को अवतार कहा गया है क्योंकि वे असाधारण या अलौकिक शक्ति से सम्पन्न हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है नौ कला से लेकर पन्द्रह कला तक अंशावतार एवं षोडश कला से पूर्ण केन्द्र ही पूर्णावतार है। सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष का रूप ग्रहण किया जिसमें 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, एक मन और पाँच महाभूत—ये सोलह कलायें थीं—

**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभि:**
**सम्भूतं षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया।। —भागवत, १.३.१**

वस्तुत: भगवान् में एक विशेष कला ही बीजरूप में है जिसे पूर्णामृता कहते हैं। यह कला षोडशी कला कहलाती है, यह सच्चिदानन्द रूपिणी है—

**षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी। —शाक्ततन्त्र**

यह बीज रूपा है इसमें सत्, चित् तथा आनन्द की समष्टि है। जब जगत् की सिसृक्षा होती है तो ये तीनों कारण कार्य रूप में परिणमित होते हैं—इन्हें त्रिगुणात्मिका प्रकृति राधा भी कहा गया है। फिर शब्द कला तथा जगत् की रूप कला प्रकट होती है अत: पाँच कलायें बन जाती हैं। सत् से ज्ञानेन्द्रियाँ, रज में कर्मेन्द्रियाँ तथा तम में पंच महाभूत प्रकट होते हैं। ईश्वर में केवल सात्त्विक अंश होता है फिर उसके अंश जीवों में त्रिगुणों की स्थिति होती है। भगवान् के पाँच कर्म हैं—सृष्टि, स्थिति, संसार, अनुग्रह, तथा निग्रह। इसके आधार पर परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव कहलाता है फिर मायारूपी छठी कला से जगत् में नानात्व भासित होता है। अत: उसमें षड्गुण या षट्कलायें प्रधानत: दिखने लग जाती हैं—

**वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्ध्य:।**
**बुद्ध्य: श्री यशश्चेति षड् वै भगवतो भगा:।।**

भगवान् का अर्थ है भग वाला। इस श्लोक में षट् भग बताये गये हैं—१. वैराग्य, २. ज्ञान, ३. ऐश्वर्य, ४. धर्म, ५. यश और ६ श्री। अर्थात् जिस व्यक्तित्व में छह गुण या कलायें पूर्णतया समाविष्ट हो वह भगवान् कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में ये छह गुण या कलायें पूर्णत: परिलक्षित होती हैं।

१. वैराग्य का अर्थ निष्काम भाव या आसक्ति रहित होना। श्री कृष्ण का मथुरागमन निरासक्ति का परम प्रमाण है। महाभारत युद्ध में एक नीतिकार के रूप में कार्य करते हुए केवल सारथि के रूप में ही अपने को दिखाना भी वैराग्य वृत्ति का उदाहरण है। गीता में उन्होंने स्पष्ट किया है—

**समोऽहं सर्वभूतेषु न द्वेष्योऽस्ति न मे प्रिय:।**

ये उनका प्रिय सिद्धान्त है कि सभी प्राणियों में समानता है, न कोई प्रिय है न कोई अप्रिय है। इस प्रकार की भावना रखना।

अत: श्री कृष्ण में वैराग्य की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है।

२. ज्ञान उनकी द्वितीय कला है। ईश्वर कृष्ण में समग्र ज्ञान या सम्पूर्ण ज्ञान गीता के माध्यम से सिद्ध होता है। गीता में उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अद्वितीय है जिनमें आज भी नये-नये अर्थ निकाले जाते हैं। अत: ज्ञान कला का भी समग्र विकास उनके द्वारा प्रकट किया गया है। महाभारत में तीन गीताएँ—कामगीता, भगवद्गीता तथा अनुगीता तथा भागवत में उद्धव गीता उनके पूर्ण ज्ञान का प्रबल प्रमाण है।

३. ऐश्वर्य तृतीय कला है। उनकी महत्ता एवं सत्ता जगद्विदित है। ऐश्वर्य आध्यात्मिक अणिमा आदि अष्ट सिद्धि तथा लौकिक अपूर्व सम्पत्ति को माना गया है। आध्यात्मिक शक्ति ही ऐश्वर्य है जिसके कारण जेल में जन्म लेकर आजीवन महासंकटों का सामना करते हुए, स्वप्रकट काल से ही अपना ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। जेल की कालकोठरी से निकलकर बचपन में भयंकर राक्षसों का उद्धार, गोवर्धन धारण आदि अलौकिक चरित्रों में ऐश्वर्य कला की पूर्णता प्रमाणित होती है। युद्ध में रथ पर बैठकर भयंकर कोलाहल में गीता का प्रवचन उनकी आध्यात्मिक शक्ति का प्रचण्ड प्रमाण है। इसी तरह समुद्र में द्वारका की स्थापना लोकोत्तर सम्पत्ति उनके ऐश्वर्य कला के बल को सूचित करती है।

४. धर्म कला यह उनके जीवन का प्रधान प्रभाव है। उनका हर कार्य धर्म संरक्षण हेतु ही है। सम्मानित शक्तिशाली योद्धा होने के पश्चात् भी धर्म निष्ठा हेतु युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में बर्तन मांजने का कार्य करना तथा सभी अतिथियों का पाँव धोना। अत: उनके चरित्र से अमानित्व, अदम्भित्व जैसे चरित्र की प्रतिष्ठा होती है। उन्हें न प्रशंसा चाहिये न ही कोई मान और सम्मान। यह अद्भुत बात उनके धर्मकला का रहस्य प्रकट करती है। कंस और जरासंध को मारने के बाद भी उनका राज्य नहीं लेना, गुरुसेवा, सत्य और क्षमा आदि अनेक रूप उनकी धार्मिक धर्मनिष्ठा का प्रमाण है कि जब महाराज परिक्षित का मृतक बालक के रूप में जन्म होने पर उन्होंने उसे जिलाते हुए कहा था— 'यदि मैंने धर्म विरुद्ध कोई कार्य न किया हो और सदा धर्माचरण किया हो तो यह बालक जीवित हो जाये।' बालक तुरन्त जीवित हो गया। अत: धर्म कला का पूर्ण विकास इनके श्रीकृष्ण रूप में सार्थक होता है।

५. यश कला में उनकी लीलाओं को याद किया जाता है। आज विश्व के सभी भागों में श्रीकृष्ण मन्दिर की स्थापना उनके जीवन्त यशोगाथा का विकास है। विश्व की असंख्य आत्माएँ उनके पावन यशोमय चरित्र से आज भी प्रेरणा लेती है।गीता एवं भागवत के द्वारा उनके सिद्धान्तित ज्ञान एवं चरित्र की महिमा विश्व को सदा आलोकित कर रही है।

६. उनकी छठी कला 'श्री' है। जो विद्या होने से अनेकता में एकता दिखाती है तथा माया के द्वारा एकता को न दिखाकर भेदमय जगत् को वास्तविक बनाती है। समस्त संसार इसी से उन्मत्त हो जाता है तथा मुक्त भी हो सकता है। समस्त ब्रह्माण्ड का बीज और आश्रय होने से सर्वोच्च कला है। समस्त जगत् उनके अन्दर सृष्ट, स्थित और संहरित होता है। यह उनका विराट् पुरुष का दिव्य रूप है। इस प्रकार उनके जीवन की प्रधान छह कलाओं को समझना चाहिये। श्रीकृष्ण का चरित्र पाँच हजार वर्षों से भी पुराना है पर उसमें आज भी सरसता एवं नवीनता का अनुभव होता है। यह उनके अनन्त एवं

असीमित ज्ञान, धर्म, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य तथा श्री उनका पूर्णावतार षोडश कलायुक्त भगवान् होना सिद्ध करती है। अन्य अंशावतार किसी एक प्रधान उद्देश्य तक सीमित है। श्रीकृष्ण का चरित्र सम्पूर्णता एवं समग्रता को परिभाषितकरता है।

**अवतारों के भेद**

भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जो अंशावतार है वे प्राय: रक्षावतार, मर्यादावतार के रूप में अवतरित होने के कारण परा प्रकृति के अधिष्ठान में अवतरित हुए जबकि भगवान् श्रीकृष्ण `परा` एवं `अपरा` प्रकृति (माया) के अधिष्ठान से अवतरित हुए हैं। अवतार किसी एक जीव के कल्याण हेतु नहीं होता है परन्तु समष्टि जीवों के कल्याण के लिए होता है। नौ कला से पन्द्रह कला तक अंशावतार तथा १६ कला के अवतार पूर्णावतार कहलाते हैं। निमित्त के कारण विशेष तथा अविशेष अवतार भी होते हैं। भगवान् का नित्य अवतार भी है। नित्य का अर्थ सभी प्राणियों में भगवान् का नित्य होना। गीता में ईश्वर की यह परिभाषा अनेकत्र दी गई है—भगवान् गीता में कहते हैं कि ईश्वर के रूप में सभी प्राणियों के हृदय में रहता हूँ तथा सभी प्राणियों को यह पता भी नहीं लगता है कि मैं उनके अन्तर्यामी रूप में रहता हूँ—

**ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**

**भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। — गीता, १८.६१**
**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो। — गीता, १५.१५**

अर्थात् समस्त प्राणियों के हृदय में संस्थित हूँ। जो हमें अधर्म से रोकता है तथा धर्म को पालन करने की मति देता है। अत: प्रत्येक जीव में भगवान् का नित्यावतार है। इसलिये कबीरदास जी कहते हैं—

**कस्तुरी कुण्डली बसे, मृग ढुंढे वन माहि।**
**ऐसे घट घट राम है, दुनिया देखें नाहिं।।**

विशेषावतार को आवेशावतार कहते हैं। पद्मपुराण में कहा गया है—

**अविष्टोऽभूत् कुमारेषु नारदे च हरिर्विभु:।**
**आविवेश पृथुं देव: शङ्खी चक्री चतुर्भुज:।।**

भगवान् सनत्कुमारों में तथा नारदजी में आविष्ट हुए तथा राजा पृथु में आविष्ट हुए। अत: सनत्कुमार, नारद तथा पृथु को आवेशावतार कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु को भी आवेशावतार माना गया है। अविशेषावतार दीक्षा प्रदान करते समय गुरु में होता है। वस्तुत: गुरु भगवान् ही होता है परन्तु शिष्य से सम्पर्क करने हेतु गुरु के द्वारा शिष्य की चेतना को प्रबोधित करता है जैसे रामकृष्ण परमहंस के माध्यम से विवेकानन्द में भगवती काली का भाव अवतरित होता है। इस तरह पाँच तरह के अवतार शास्त्रों में माने गये हैं।

शैव तथा शाक्तों के अनुसार भगवान् शिव में स्वतन्त्रता, नित्यता, नित्यतृप्तता, सर्वकर्तृकता एवं सर्वज्ञता आदि पञ्च शक्ति कला रहती है जिनका नाम है—शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या और माया। छठी कला इनका आधार या शिव का आश्रय है। इसी प्रकार जीव में ये कलायें संकुचित या सीमित रूप में रहती है। इनका नाम है—नियति, कला, राग, काल तथा अविद्या हैं अर्थात् शिव सत्य है, नित्य है, आनन्दमय है, सर्व कार्य करता है तथा सर्वज्ञ है। जीव परतन्त्र है, कालाधीन है, कुछ आनन्द को प्राप्त करता है तथा कुछ कार्य कर सकता है तथा कुछ जानता है। इसलिये एक को आत्मा दूसरे को परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार विष्णु पुराण के अन्त में भगवान् शब्द के अर्थ के विचार में कहा गया `भ` का अर्थ भर्ता और सम्भर्ता है, गकार का अर्थ नेता, गमयिता स्रष्टा है। भग की षट् कलाओं का नाम है—समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्रश्री, समग्र ज्ञान तथा समग्र वैराग्य—

**सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।**
**नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुनिः।**
**ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।**
**ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।। — विष्णुपुराण, ६.५.७३–७४**

भगवान् में `व` का अर्थ है सभी प्राणी जिसमें बसते हैं, भगवान् उनका आधार है। प्राणियों की आत्मा में भगवान् भी बसते हैं। अतः उन्हें वासुदेव कहा जाता है। षाड्गुण्य ही भग है अर्थात् ६ कलाओं या गुणों का समूह। भगवान् का वाच्य अर्थ है कि जो उत्पत्ति (जन्म) प्रलय (नाश) का कर्त्ता, प्राणियों का आने एवं जाने का आधार है तथा विद्या तथा अविद्या को जानता है वह भगवान् है—

**वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।**
**सर्वभूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोन्वयः।। — विष्णुपुराण, ६.५.७५**
**उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिम्।**
**वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवान् इति।। — विष्णुपुराण, ६.५.७८**

वस्तुतः भगवान् में कोई दोष नहीं होता है। कोई त्याज्य अंश नहीं होता है तथा सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज गुण रूपी छह कला वाला होता है। भगवान् के आश्रय में सभी सांसारिक प्राणी रहते हैं तथा स्वयं भगवान् परमात्मा उन प्राणियों में भी रहता है अतः वासुदेव कृष्ण माना जाता है—

**ज्ञान–शक्ति–बलैश्वर्य–वीर्यतेजांस्यशेषतः।**
**भगवच्छब्दवाच्यानि, विना हेयैर्गुणादिभिः।।**
**सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।**

**भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः।। — विष्णुपुराण, ६.५.७९-८०**

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि भगवान् तो समग्र कला तथा गुणों का सागर है अतः इसकी कलायें अनिर्वचनीय एवं असंख्य हैं।

तन्त्रागम के अनुसार बीजरूप में पाँच कलायें हैं—

**अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।**
**आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततो द्वयम्।।**

वस्तुतः ब्रह्म में अस्ति = होना सत् का लक्षण है। भाति = प्रकाशित होना अर्थात् चिद् या ज्ञान को कहा जाता है तथा प्रिय = आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द पर ब्रह्म की तीन कलायें हैं। नाम = शब्द तथा रूप = भौतिक पदार्थ जगत्। ये दो शक्ति की बीजकलायें हैं। इन्हें वेदों में शब्द ब्रह्म कहा गया है। इस प्रकार ये पाँच प्रधान बीजकला है।

श्रीकृष्ण में पहली सत् कला के अनुसार कर्म की पूर्ण लीला, दूसरी चिद् कला के अनुसार ज्ञान की पूर्ण लीला तथा तीसरी आनन्द कला के अनुसार उपासना तथा चतुर्दश रसों की लीला प्रकट होती है। अतः श्री कृष्ण में ज्ञान समुद्र की तरंगे, अनन्त सत् कर्मों की निधि तथा उपासना के सभी रसों की लीला सुलभ होती है। इसलिये ऐश्वर्य के साथ मधुरता प्राप्त होती है। बाँसुरी उनकी मधुरता को सिद्ध करती है।

इन्द्रविजय पुस्तक में पं. मधुसूदन ओझा ने दिव्य कला चौसठ तक बताई है (पृ. २०४)। श्री कृष्ण योगेश्वर है उनके लिये योग द्वारा उत्पन्न कलाओं का नामकरण इस प्रकार हैं—

१. मन के ज्ञानेन्द्रिय संयम से १६ कलायें—अष्ट सिद्धि—१.अणिमा, २. महिमा, ३. गरिमा, ४. लघिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्रकाम्य, ७. ईशित्व, ८. वशित्व, ९. भूतभविष्य ज्ञान, १०. दूरपरोक्षज्ञान, ११. सभी प्राणियों की आवाज का ज्ञान, १२. मनोविज्ञान, १३. भूगर्भविज्ञान, १४. भुवनज्ञान, १५. ओषधि ज्ञान, १६. तारा ज्योति ज्ञान।

२. कर्मेन्द्रिय संयम (तपोबल) तथा प्राणसंयम (देवबल) से प्राप्त १६ कलायें—१. देव-साक्षात्कार, २. कृत्यासिद्धि, ३. शरीर से निकली हुई आत्मा को देखना, ४. मृतपुरुष से साक्षात्कार, ५. विराड्रूप दर्शन, ६. माया व्यामोह, ७. उपश्रुतविद्या, ८. संस्कारोपधानी विद्या, ९. काय व्यूह, १०. परकाय प्रवेश, ११. प्राणहारिणी विद्या, १२. मृतसंजीवनी, १३. स्थाणु संजीवनी, १४. छाया निग्रहणी, १५. आकृति परिवर्तनी, १६. लिङ्गपरिवर्तिनी।

३. कर्मेन्द्रिय बल के द्वारा निगम तथा आगम के माध्यम से प्राप्त १६ कलायें—१. सर्पाकर्षिणी, २. अग्निजलस्तभिनी, ३. अक्षयकरणी, ४. निग्रहकरणी, ५. पुत्रसंजननी, ६. जलवर्षिणी, ७. अपोनप्त्रीय, ८. मधुविद्या, ९. मारणी, १०. मोहनी, ११. उच्चाटनी, १२. वशीकरणी, १३. विद्वेषणी, १४. स्तम्भनी, १५. आकर्षणी तथा १६. संरक्षणी।

४. कर्मजन्य भौतिक कलायें—१. मृतसंजीवनीगुटिका, २. संजीवनकरणी, ३. विशल्यकरणी, ४. सावर्ण्यकरणी, ५. सन्धानकरणी, ६. अरिष्ट भैषज्या, ७. डिम्भप्रसविनी, ८. बला अतिबला, ९. दिव्यविमान, १०. पुष्पक विमान, ११. सोमविमान, १२. नौकाविमान, १३. हर्यश्व विमान, १४. प्लवविमान, १५. अमृतगवी, १६. शिलासन्तरणी।

अर्थात् मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा कर्मजन्य कलायें प्रत्येक १६ तरह की है, कुल ६४ है। चन्द्रमा में प्रत्येक तिथि की कला भिन्न होती है उसकी सोलह कलाओं के नाम हैं—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिमा, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा तथा पूर्णामृता।

करपात्री जी ने अपने ग्रन्थ श्रीविद्यारत्नाकर में महात्रिपुरसुन्दरी को ब्रह्मस्वरूपिणी षोडशी विद्या सिद्धान्तित किया है। तिथि रूपी पन्द्रह कलायें उसकी नित्य कलायें हैं। श्रीयन्त्र के नव आवरणों में शताधिक कलाओं की अर्चना विधि प्रस्तुत की है। जिज्ञासु वहीं देखें। उपासना के ग्रन्थों में परमात्मा की कलाओं का विस्तृत अर्चन उपलब्ध है। विस्तार भय से लिख नहीं रहे हैं।

किसी के मत में १६ कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—श्री, भू, कीर्ति, वाणी, लीला, कान्ति, विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, विनय, सत्य, ईशिता, अनुग्रह।

प्रत्येक देव के साथ उनकी कला या तिथि रूपी कलायें नित्य विराजमान रहती है। जिस तरह सूर्य के साथ उसकी किरणें रहती हैं। अत: कलायें अनन्त मानी जाती हैं जिनका वर्णन किसी मनुष्य के द्वारा सम्भव नहीं है। कबीरदास जी ने कहा है कि—

**सारी धरती कागज करु, लेखनी करु वन राय।**
**सात सिन्धु की मषी करुं, हरिगुण लिखा न जाय।**

अत: षोडश कला का वर्णन ही पर्याप्त है।